

महात्मा बुद्ध का मध्यम मार्ग: वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० विद्या विपुल शर्मा*

प्राप्ति: 25 मार्च 2026 / स्वीकृत: 27 मार्च 2026 / प्रकाशित: 31 मार्च 2026
जर्नल वेबसाइट: <https://anubodhan.org>

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र बौद्ध दर्शन की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिकता प्रमाणित करने का दर्शन जगत में एक नवीन प्रयास है। बुद्ध के वचनों के आलोक में जो मार्गदर्शन हमें मिला है उसे हमारे पक्ष में समझने का प्रयास है। भारतीय दर्शन के सभी दार्शनिक विश्व को दुःखःमय मानते हैं। जीवन भर इंद्रिय सुख, प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि तथा अतियों के पीछे भागता मन एक दिन इन सब से थक कर इस भोग विलास को छोड़कर त्यागी होने की ओर बढ़ता है, लेकिन भागना शुरू रहता है, कुछ पाने की इच्छा सदैव रहती है। बहुत कुछ पा लेना, या बहुत कुछ छोड़ देना, यह सब मन का ही खेल है। मन दोनों अतियों के बीच भागता है। इन्हीं अतियों से बचना है। अति जीवन की हो या मृत्यु की, भूख की हो या त्याग की, संसार की हो या निर्माण, की यह सभी पतन की ओर ले जाती है। इन अतियों से मुक्त होना ही मध्यम मार्ग है। जो मन के द्वारा निर्मित इन अतियों से मुक्त है वही दुःख से मुक्त हो सकता है। वीणा के तार मध्यम खींचो, पर मध्यम ढीला रखो, यही निर्वाण का मार्ग है। निर्वाण का अर्थ है सभी इच्छाओं का छूट जाना, तभी व्यक्ति मन से ऊपर उठता है। जब वह सभी इच्छाओं को छोड़कर मोक्ष की इच्छा करने लगता है, तभी वह तथागत या बुद्ध कहलाता है, विरक्त होने की ओर जाता है।

बुद्ध ने सांसारिक सुखों में लिप्त होने या कठोर संयम और तपस्या में लीन होने, इन चरम अतियों के बजाय मध्यम मार्ग का सुझाव दिया, जिसका अनुसरण किया जाना चाहिए। ना जन्म ना मृत्यु, ना समाप्ति ना स्थायित्व, ना एकरूपता ना विविधता, ना आना ना जाना—इन आठ

*शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ई-मेल: vidhyadarshan@yahoo.com

निषेधों के मध्यम मार्ग होते हैं—वह मार्ग या वह पथ जो ध्रुवीय चरम सीमाओं से परे है और विरोधी विचारों की चरम सीमाओं से परे है। तथागत और बुद्ध का मध्यम मार्ग खुली उड़ान एवं मुक्ति की राह दिखाता है। बुद्ध का मध्यम मार्ग उनकी शिक्षाओं का मुख्य आधार है। महान सिद्धियों के पश्चात बुद्ध ने अतिवाद से दूर रहने की शिक्षा दी इसे ही मध्यम मार्ग की शिक्षा कहते हैं। बुद्ध की शिक्षाएं हमें संस्कृत में बोधि नामक अवस्था की और मार्गदर्शन करती है जिसका अर्थ आत्म साक्षात्कार होता है और यही सर्वोच्च अवस्था है। उनके क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव मानव जाति पर रहा।

बीज-शब्द : बौद्ध दर्शन, महात्मा बुद्ध, अष्टांगिक मार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद, भारतीय दर्शन, निर्वाण प्राचीन भारत में उत्पन्न हुई एक गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपरा बौद्ध दर्शन के संस्थापक महात्मा बुद्ध माने जाते हैं। बुद्ध ने राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में जन्म लिया लेकिन एक दिन घूमते हुए सिद्धार्थ ने एक रोग ग्रस्त व्यक्ति, एक वृद्ध और एक श्मशान की ओर ले जाते मृतक शरीर को देखा। इन सभी दृश्यों को देख कर सिद्धार्थ का भावुक हृदय यह स्वीकारने में तनिक भी संशय नहीं कर सका कि संसार दुःखमय है। संसार के दुःखों को किस प्रकार से दूर किया जाए यह चिंता निरंतर सिद्धार्थ को सताने लगी। दुःख के समाधान को ढूंढने के लिए वे घर से निकल पड़े और उन्होंने संन्यास को अपनाया। तत्वज्ञान अर्थात् बोधि प्राप्त कर लेने के बाद वे बुद्ध कहलाए और इसके अतिरिक्त उन्हें 'तथागत', जो वस्तुओं का वास्तविक स्वरूप जानता, है तथा 'अर्हत्' की संज्ञा दी गई।

सत्य की ज्ञान प्राप्ति होने के बाद बुद्ध ने लोक कल्याण के लिए अपने संदेशों को जनसामान्य तक पहुंचाने का संकल्प लिया और उन्होंने घूम-घूम कर जनसामान्य को उपदेश देना प्रारंभ किया। दुःख के कारण और दुःख दूर करने के उपायों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने दुःख से त्रस्त मानव को दुःख से छुटकारा पाने का आश्वासन दिया। बुद्ध के उपदेशों के पश्चात बौद्ध धर्म का विकास हुआ, बौद्ध धर्म सर्वप्रथम भारत में फैला। कुछ समय पश्चात यह धर्म भारत तक ही नहीं अपितु दूसरे देशों में भी फैला। इस प्रकार यह धर्म विश्वधर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। बौद्ध दर्शन की अनेक अनुयाई हुए।

बुद्ध ने अपने उपदेश पुस्तक में नहीं लिखे, उनके सभी उपदेश मौखिक ही थे। बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के बाद में बुद्ध के उपदेशों का संग्रह उनके ही शिष्यों ने त्रिपिटक में किया। त्रिपिटक को बौद्ध दर्शन में मूल अर्थ पिटारी कहते हैं, जिस में सूक्त पिटक, अभिधम्म पिटक और विनय पिटक हैं। सूक्त पिटक में धर्म संबंधी बातों की चर्चा है, अभिधम्म पिटक में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का संकलन एवं विनय पिटक में नीति संबंधी बातों की व्याख्या की गई है। बौद्ध ग्रंथ में त्रिपिटक के अतिरिक्त मिलिंदपन्हो ग्रंथ का नाम भी आता है।

तत्व शास्त्र के विरोधाभास से बुद्ध की प्रवृत्ति

बुद्ध के समय विचार क्षेत्र एवं नैतिक क्षेत्र में अराजकता थी। मानव का नैतिक जीवन निष्प्राण हो रहा था और वह अपने कर्तव्यों को भूल रहा था। उस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता

थी जो मानव को नैतिक जीवन की समस्याओं के प्रति जागरूक बनाने में सहायक हो सके। बुद्ध ही थे जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण रूप से सफलतापूर्वक किया।

बुद्ध सर्व ज्ञानी थे। उन्हें मानव की ज्ञान की सीमाएं विदित थीं। उन्हें पता था तत्व शास्त्र के प्रश्नों का निश्चित रूप से उत्तर नहीं दिया गया है। तत्व शास्त्र के प्रश्नों में उलझना व्यर्थ के विवाद को बढ़ाना है।¹ जिस प्रकार अंधे स्पर्श के द्वारा हाथी के स्वरूप का वर्णन करने पर अलग-अलग वक्तव्य बताते हैं, क्योंकि अंधों को हाथी का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है, उसी प्रकार मानव आत्मा, ईश्वर और जगत जैसे विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ है। इसलिए वे तत्व शास्त्रीय प्रश्नों के प्रति मौन रहते थे। उन्होंने दर्शन का उद्देश्य दुःख का अंत कहा है, इसलिए उन्होंने दुःख की समस्या और दुःख निरोध पर ही अधिक जोर दिया। वास्तव में दुःख से पीड़ित मानव को पाकर इन तत्व शास्त्रीय प्रश्नों में उलझना मूर्खता नहीं तो और क्या है। उन्होंने एक उपमा द्वारा सुंदर ढंग से समझाया यदि कोई बाण से आहत होकर किसी के पास आता है तो उस दूसरे व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह बाण को हृदय से निकालकर उसकी सेवा करें, ना की उससे यह पूछे कि तीर कैसा है, तीर किसने मारा, कितनी दूर से मारा, क्यों मारा, तीर मारने वाले का वर्ण क्या था, यह सब मूर्खता है।² इसी प्रकार दुःख से पीड़ित मानव के लिए आत्मा, जगत, ईश्वर जैसे प्रश्नों के अनुसंधान में निर्मग्न रहना निरर्थक ही कहा जा सकता है। इसलिए तत्व शास्त्र के प्रश्नों के प्रति बुद्ध का मौन रहना एक प्रयोजनात्मक विचार है और उनके मौन रहने का उचित अर्थ भी है। बौद्ध विचारधारा के मूल में चार आर्य-सत्य समाये हुए हैं :-

1. दुःख
2. दुःख समुदाय
3. दुःख निरोध
4. दुःख निरोध मार्ग

बुद्ध दर्शन का सार इन्हीं चार आर्य सत्यो में निहित है। बुद्ध के यही चार आर्य-सत्य व्यवहारवाद का प्रमाण कहे जा सकते हैं। इसलिए इन पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

प्रथम आर्य-सत्य : दुःख

बुद्ध ने बताया — सर्व दुःखं दुःखम्। जीवन में दुःख, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, चिंता, असंतोष, निराशा, शोक जैसे अनेक प्रकार के दुःखों की व्यापकता है।³ पांच स्कंध—शरीर, अनुभूति, प्रत्यक्ष, इच्छा एवं विचार भी दुःखमय हैं। जन्म में दुःख है, नाश में दुःख है, रोग दुःखमय है, मृत्यु दुःखमय है, अप्रिय से संयोग दुःख है और प्रिय से वियोग होना दुःख है। महात्मा बुद्ध ने

¹ ब्रह्मजाल सुत्त

² मज्झिम निकाय

³ दीघ-निकाय

कहा— “दुनिया में दुःखियों ने जितने आंसू बहाये हैं उनका पानी महासागर में जितना जल है उससे भी अधिक है।”

संसार को दुःख में जानकर केवल शोक करना मानव के लिए शोभामय प्रतीत नहीं होता है। इसलिए बुद्ध ने दुःख के तीर से घायल मनुष्य के हृदय से तीर को निकाल देने का आदेश दिया। बुद्ध ने दुःख निरोध को ही परम शुभ माना। जब मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर लेता है तब बौद्ध दर्शन आशावाद का संकेत देता है।

द्वितीय आर्य-सत्य : दुःख-समुदाय

भारतीय दर्शन में प्रत्येक दार्शनिक विश्व को दुःखमय जानकर इस दुःख के कारण को खोजने का प्रयास करता है। बुद्ध भी भारतीय दर्शन की इस परंपरा का पालन करते हुए दुःख के कारण के रूप में प्रतीत्यसमुत्पाद का विश्लेषण करते हैं। यह दो शब्दों से मिलकर बना होता है, वह दो शब्द हैं ‘प्रतीत्य’ और ‘समुत्पाद’। ‘प्रतीत्य’ का अर्थ है किसी वस्तु के उपस्थित होने पर, व ‘समुत्पाद’ का अर्थ है किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इसलिए प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ है एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। ‘क’ के आगमन से ‘ख’ की उत्पत्ति, और ‘ख’ के होने पर ‘ग’ की उत्पत्ति होगी, यह सिद्धांत कार्यकारण सिद्धांत पर आधारित है, जो प्रमाणित करता है कि प्रत्येक कार्य अपने कारण पर आश्रित है। प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार प्रत्येक विषय का कुछ ना कुछ कारण होता है, कोई भी घटना अकारण उपस्थित नहीं होती है।⁴ हमारे दुखों का कारण यह है की हम सांसारिक विषयों को बुद्धि की दृष्टि से नहीं देख सकते।⁵

दुःख भी एक घटना है और दुःख का सांकेतिक नाम ‘जरामरण’ है। ‘जरा’ का अर्थ वृद्धावस्था होता है और ‘मरण’ का अर्थ होता है मृत्यु। जरामरण संसार के सभी दुःख, रोग, निराशा आदि का प्रतीक है।

‘जरामरण’ का कारण बुद्ध के अनुसार ‘जाति’ है, अर्थात् जन्म ग्रहण करना। यदि मानव शरीर धारण नहीं करता, तो उसे सांसारिक दुःख का सामना करना ही नहीं पड़ता। जन्म ग्रहण करना, शरीर धारण करना ही दुःख का कारण है।

‘जाति’ का कारण ‘भव’ है। मानव को इसीलिए जन्म ग्रहण करना पड़ता है क्योंकि उसमें इसकी प्रवृत्ति विद्यमान होती है। इसी प्रवृत्ति को ‘भव’ कहते हैं। यह प्रवृत्ति ही मानव को जन्म ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती है।

‘भव’ का कारण ‘उपादान’ है। सांसारिक वस्तुओं में आसक्त रहने की चाहत ‘उपादान’ है।

⁴ महापरिनिर्वाण सूत्र

⁵ महानिदान-सुत्त

‘उपादान’ का कारण ‘तृष्णा’ है। शब्द, स्पर्श, रंग इत्यादि विषयों के भोग की वासना ‘तृष्णा’ है। ‘तृष्णा’ के कारण ही मानव सांसारिक विषयों के पीछे अंधा होकर दौड़ता रहता है। ‘तृष्णा’ का कारण ‘वेदना’ है। इंद्रियों के द्वारा जो हमें ‘वेदना’ अर्थात् सुख अनुभूति होती है, उसी से हमारी ‘तृष्णा’ जगी रहती है। ‘वेदना’ या इंद्रिय अनुभूति बिना इंद्रिय ‘स्पर्श’ के नहीं हो सकती, इसलिए इंद्रियों का विषयों के साथ जो संपर्क होता है, उसे ही ‘स्पर्श’ कहते हैं। यदि इंद्रियों का विषयों के साथ संपर्क नहीं हो तो इंद्रिय अनुभूति अर्थात् ‘वेदना’ का उदय नहीं होगा। ‘स्पर्श’ के लिए पांच ज्ञानेंद्रियाँ और मन की आवश्यकता है, इसलिए पांच ज्ञानेंद्रियाँ और मन का समूह ही विषयों के साथ संपर्क करता है। यही ‘षडायतन’ कहलाता है। गर्भस्थ भ्रूण के शरीर और मन को ‘नाम-रूप’ कहते हैं। गर्भस्थ भ्रूण का शरीर और मन ना हो तो ‘षडायतन’ का अस्तित्व संभव नहीं है। यदि गर्भावस्था में चैतन्य या ‘विज्ञान’ ना हो तो ‘नाम-रूप’ की वृद्धि ही नहीं हो सकती। अतः ‘नाम-रूप’ का कारण ‘विज्ञान’ है। अतीत जीवन के कर्मों के प्रभाव के कारण ही ‘संस्कार’ निर्मित होते हैं और पूर्व जन्म की प्रवृत्ति के रूप में ‘संस्कार’ को माना जाता है। ‘संस्कार’ का कारण ‘अविद्या’ है। ‘अविद्या’ का अर्थ है ज्ञान का अभाव। जो वस्तु अवास्तविक है उसे वास्तविक समझ लेना, जो वस्तु दुःखमय है उसे सुखमय समझ लेना, जो आत्मा नहीं है अर्थात् अनात्मा है उसे आत्मा समझना—‘अविद्या’ का प्रतीक है। ‘अविद्या’ ही समस्त दुःखों का मूल कारण है।

क्षणिक, दुःखद, असार और हैय विषयों को स्थाई, सुखद, सार तथा उपादेय समझ लेना ही अविद्या या मिथ्या ज्ञान है। यही जन्म का मूल कारण है। अविद्या दुःखों का मूल कारण इसीलिए है कि कार्य कारण की यह श्रृंखला अविद्या पर आकर रुक जाती है। बुद्ध ने दुःखों का मूल कारण अविद्या को मानकर भारतीय दार्शनिक परंपरा का पालन करते हुए अविद्या को ही दुःखों का मूल कारण ठहराया है। बुद्ध की इस श्रृंखला का नाम भाव-चक्र, द्वादश निदान, प्रतीत्यसमुत्पाद और संसार-चक्र है।

प्रतीत्यसमुत्पाद का यह सिद्धांत बौद्ध दर्शन में अनात्मवाद की स्थापना करने में सहायक है। विश्व की प्रत्येक वस्तु क्षणिक है। आत्मा को चिरस्थायी सत्ता मानना भूल है। प्रतीत्यसमुत्पाद को बौद्ध दर्शन का केंद्र बिंदु कहना अतिशयोक्ति नहीं है।

तृतीय आर्य-सत्य : दुःख-निरोध

द्वितीय आर्य-सत्य से स्पष्ट होता है कि दुःख का कारण है। दुःख के कारणों का यदि अंत हो जाए, तो दुःख का अंत भी अवश्य हो सकता है। इस अवस्था को निर्वाण कहते हैं। यह दुःख-निरोध की अवस्था है। निर्वाण की अवस्था पूर्णतः शांत, स्थिर तथा तृष्णाविहीन होती है, साधारण अनुभवों के द्वारा इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।⁶ निर्वाण की प्राप्ति जीवन के रहते भी हो

⁶ सामञ्ज-फल सुत

सकती है। एक मानव इस जीवन में भी अपने दुःखों का निरोध कर सकता है, यदि वह अपने जीवन में राग, द्वेष, मोह, अहंकार इत्यादि पर विजय प्राप्त कर ले एवं शुद्ध आचरण और शील के साथ आर्य-सत्य का निरंतर ध्यान करते हुए समाधि के द्वारा प्रज्ञा प्राप्त करें। साधारण ढंग से यदि बीज का वपन किया जाए तो पौधे की उत्पत्ति होती है, किन्तु यदि बीज को भूँज दिया जाए तो उसके वपन से पौधे की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।⁷

निर्वाण प्राप्त व्यक्ति समस्त दुःखों से निवृत्त हो जाता है। निर्वाण के पश्चात् पुनर्जन्म की संभावना का अंत हो जाता है। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति का शेष जीवन शांति से व्यतीत होता है। निर्वाण प्राप्ति की अवस्था व्यक्ति वर्णनातीत है।⁸

चतुर्थ आर्य-सत्य : दुःख-निरोध-मार्ग

जिन कारणों से दुःखों की उत्पत्ति हुई, उन कारणों को नष्ट करने का उपाय ही निर्वाण का मार्ग है। जिस मार्ग को निर्वाण प्राप्ति के लिए बुद्ध ने सबके समक्ष रखा, उसके आठ अंग हैं।⁹ इसलिए इसे अष्टांगिक मार्ग कहते हैं, और यही बौद्ध धर्म का सार है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह मार्ग खुला है। बुद्ध का यह विचार आशावादी है। बुद्ध का दर्शन ऐसे मार्ग की ओर संकेत है जिसका प्रत्येक व्यक्ति पथिक बन सकता है। यह आर्य-सत्य बुद्ध के धर्म और नीति शास्त्र का आधार स्वरूप है। अतः बुद्ध दर्शन व्यवहारिक है।

बौद्ध दर्शन का अष्टांगिक मार्ग

सम्यक् दृष्टि

बुद्ध ने दुःखों का मूल कारण अविद्या को माना, जिससे मिथ्या दृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। इस मिथ्या दृष्टि को त्याग कर वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप पर सतत ध्यान रखना चाहिए। इसी को सम्यक् दृष्टि कहते हैं।

सम्यक् संकल्प

निर्वाण प्राप्त करने हेतु सांसारिक विषयों की आसक्ति, दूसरों के प्रति विद्वेष और हिंसा का परित्याग करने का संकल्प करना चाहिए। अशुभ को नहीं करने का संकल्प ही सम्यक् संकल्प है, जिसमें त्याग और परोपकार की भावना निहित है।

सम्यक् वाक्

⁷ अंगुत्तर-निकाय; 3.35

⁸ Hibbert Journal (अप्रैल 1934) में प्रोफेसर राधाकृष्णन् का "The Teaching of Buddha by Speech and Silence" लेख

⁹ दीघ निकाय तथा मज्झिम निकाय

जिन वचनों से दूसरों को कष्ट हो उनका परित्याग करना अर्थात् मिथ्यवादिता, निंदा, अप्रिय वचन तथा वाचालता से हमें बचना चाहिए। सत्य एवं प्रिय वचनों का प्रयोग करना ही सम्यक् वाक् है

सम्यक् कर्मान्त

बुरे कर्मों का परित्याग बुद्ध के अनुसार बुरे कर्म तीन है—हिंसा, स्तैय, इंद्रिय भोग। सम्यक् कर्मान्त इन तीनों कर्मों का प्रतिकूल होना है। इंद्रिय सुख का परित्याग करना ही सम्यक् कर्मान्त कहलाता है।

सम्यक् अजीविका

शुद्ध उपाय से जीविकोपार्जन करना चाहिए। जीविका निर्वाह के लिए उचित मार्ग का अनुसरण और निषिद्ध उपाय का त्याग करके अपने सम्यक् संकल्प को सुदृढ़ रखना चाहिए। धोखा, रिश्वत, अत्याचार आदि अशुभ उपायों से जीविका अर्जित करना महान पाप है। सम्यक् कर्मान्त को सार्थक बनाने के लिए सम्यक् अजीविका का पालन अनिवार्य है।

सम्यक् व्यायाम

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म एवं सम्यक् अजीविका के अनुसार चलने पर भी कोई साधक निर्वाण को अपनाने में असफल रह सकता है। इसका कारण यह है कि हमारे मन में पुराने बुरे विचार अपना घर बना चुके होते हैं और नवीन बुरे विचार निरंतर मन में प्रवाहित होते रहते हैं। इसलिए पुराने बुरे विचारों को मन से निकाल देना और नए बुरे विचारों को मन में आने से रोकना अत्यावश्यक है। मन कभी शांत नहीं रह सकता, इसलिए मन को अच्छे भावों से परिपूर्ण रखना चाहिए और अच्छे भावों को मन में कायम रखने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। प्रयत्नों के चार प्रकार—

1. पुराने बुरे भावों का नाश
2. नए बुरे विचारों को मन में आने से रोकना
3. अच्छे भावों का मन में भरना
4. इन अच्छे भावों को मन में कायम रखना

इन चार प्रकार के प्रयत्नों को सम्यक् व्यायाम कहते हैं। इस प्रकार सम्यक् व्यायाम उन क्रियाओं को कहते हैं जिनसे अशुभ मनःस्थिति का अंत हो जाता है और शुभ मनःस्थिति का प्रादुर्भाव होता है।

सम्यक् स्मृति

अभी तक जिन विषयों का ज्ञान हो चुका है उन्हें हमेशा स्मरण रखना। इस मार्ग पर चलने के लिए बराबर सतर्क रहने की आवश्यकता है। सम्यक् स्मृति के द्वारा इसी बात पर प्रभाव डाला गया है। सम्यक् स्मृति का अर्थ वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के संबंध में जागरूक रहना है। निर्वाण की कामना रखने वाले व्यक्ति को शरीर को शरीर, मन को मन व संवेदना को संवेदना

समझना अत्यावश्यक है। यह सोचना कि 'यह मैं हूँ' अथवा 'यह मेरा है' हमेशा सर्वदा भ्रमात्मक है। शरीर को शरीर, मन को मन, संवेदना को संवेदना समझने का अर्थ यही है कि यह वस्तुएं सभी क्षणिक और दुःखमय हैं। मनुष्य अज्ञान से वशीभूत होकर शरीर, मन, संवेदना, सभी को स्थाई और सुखमय समझने लगता है और इन विषयों से आसक्त हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप इन वस्तुओं के नाश होने पर उसे दुःख की अनुभूति होती है। इसलिए उनके वास्तविक स्वरूप का स्मरण रखना अत्यंत आवश्यक है। बुद्ध ने कहा कि शरीर क्षणभंगुर है, नश्वरता है। संक्षेप में—सम्यक् स्मृति के कारण मनुष्य सभी विषयों से विरक्त हो जाता है और सांसारिक बंधनों में नहीं पड़ता है।

सम्यक् समाधि

इन मार्गों पर चलकर जो मनुष्य अपनी सभी चित्तवृत्तियों को दूर कर लेता है, वह सम्यक् समाधि में प्रविष्ट होने के योग्य हो जाता है और इसके पश्चात् चार अवस्थाओं को पार करके निर्वाण की प्राप्ति कर लेता है।

प्रथम अवस्था : साधक बुद्ध के चार आर्य-सत्यों का मनन-चिंतन करते हुए तर्क एवं वितर्क के साथ अनेक प्रकार के संशय मन में उत्पन्न होने पर उनका निराकरण स्वयं कर लेता है।

दूसरी अवस्था : साधक के सभी संदेह दूर हो जाते हैं, आर्य-सत्यों के प्रति श्रद्धा की भावना का विकास होता है। इसमें तर्क और वितर्क की आवश्यकता महसूस नहीं होती, आनंद और शांति की अनुभूति होती है। प्रगाढ़ चिंतन के साथ शांति और चित्त स्थिरता का भाव उदय होता है।

तीसरी अवस्था : आनंद और शांति से मन को हटाकर एक उपेक्षा भाव को लाने का प्रयत्न होता है। आनंद एवं शांति की चेतना निर्वाण प्राप्ति में बाधक होती है, इसलिए इससे तटस्थ रहने का प्रयास किया जाता है। इससे चित्त की साम्य अवस्था और उसके साथ-साथ दैहिक सुख का भाव भी रहता है। इन दोनों का बोध रहता है, किंतु समाधि के आनंद के प्रति उदासीनता आ जाती है।

चतुर्थ अवस्था : समाधि की इस अवस्था में दैहिक विश्राम और मन के आनंद की ओर किसी का भी ध्यान नहीं रहता। इस अवस्था के प्राप्त हो जाने के बाद व्यक्ति अर्हत् की संज्ञा से विभूषित हो जाता है। चित्तवृत्ति और सभी प्रकार के दुःखों का निरोध हो जाता है। यह अवस्था सुख-दुःख से परे है।

यह पूर्ण शांति, पूर्ण विराग, पूर्ण निरोध, की निर्वाण अवस्था है। बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग प्रज्ञा, शील और समाधि नामक विशेष अंगों में विभाजित होते हैं। बुद्ध बताते हैं—शील एवं प्रज्ञा एक दूसरे की पुष्टि करते हैं।¹⁰

¹⁰ दीघ निकाय

महात्मा बुद्ध के मध्यम- मार्ग की वर्तमान में प्रासंगिकता

बुद्ध के आर्य सत्यों के अनवरत चिंतन से इच्छाओं और भावनाओं का नियंत्रण होता है। दृढ़ संकल्प और तृष्णा रहित आचरण से एक शुद्ध अवस्था उत्पन्न होती है, विचार प्रेरणा और भावनाओं में शिष्टता आती है। आर्य-सत्य के ज्ञान के प्रकाश में आत्मा परिशुद्ध होती जाती है और सम्यक् समाधि की अंतिम अवस्था सभी बाधाओं के दूर होने पर संभव हो सकती है। अखंड समाधि से प्रज्ञा का उदय होता है और जीवन का रहस्य पूर्णता स्पष्ट हो जाता है। अविद्या और तृष्णा का अंत हो जाता है जिससे दुःख का मूल कारण नष्ट हो जाता है। निर्वाण प्राप्ति के साथ ही पूर्ण प्रज्ञा, पूर्ण शील और शांति का उदय हो जाता है।

बौद्ध दर्शन नैतिक जीवन दर्शन है। बुद्ध ने अप्रत्यक्ष और संदिग्ध विषयों के बारे में तर्क का परित्याग किया क्योंकि उससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होता है। बुद्ध के उपदेश वर्तमान वातावरण में आज के विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण में सहायक हो सकते हैं। बुद्ध के समय आचार्यों का मुख्य कार्य शिक्षा के नैतिक जीवन का विकास करना था। चरित्र निर्माण के लिए आवश्यक नियम का निर्धारण किया गया था जो वर्तमान परिपेक्ष्य में चरितार्थ होते हैं। बुद्ध के उपदेशों से आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता, आत्म-संयम, आत्म-विश्वास, विवेक आदि गुणों का विकास करना सीख सकते हैं। बुद्ध के उपदेशों में भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का प्रसार करना ही है। बुद्ध के उपदेश शारीरिक व्यायाम, मानसिक शिक्षा, भौतिक कल्याण, नैतिक जीवन के अभ्यास का समन्वय करने की शिक्षा देते हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के समन्वित विकास पर ध्यान देते हैं।

बौद्ध दर्शन के अनुसार भावी विकास की क्षमताएं वर्तमान अस्तित्व में विद्यमान हैं। मानव के वर्तमान अस्तित्व में जो विद्यमान नहीं है, उससे भिन्न उसे नहीं बनाया जा सकता। कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता, भावी कार्य के बीज वर्तमान कारण में विद्यमान रहते हैं। इसी कारण-कार्य नियम को बौद्ध दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद का नियम कहा। परंतु इससे यह निश्चित नहीं होता कि किसी व्यक्ति की नियति पूर्व निर्धारित है, वह स्वेच्छा से कुछ बन नहीं सकता। बौद्ध दर्शन में कारण-कार्य संबंध के साथ यह प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्ति का भविष्य है, और उसका भविष्य सम्यक् संकल्प पर निर्भर करता है। बौद्ध दर्शन में विश्वास रखने वाला व्यक्ति भविष्य के लिए लक्ष्य निर्धारित कर सकता है, अपनी क्षमताओं के अनुरूप अपना विकास कर सकता है। सही प्रकार का संकल्प करने में व्यक्ति की सहायता सम्यक् संकल्प करता है और उसे अपने भावी जीवन की दिशा निर्धारित करने में मार्गदर्शन कर सकता है। बौद्ध दर्शन जातिगत भेदों को नहीं मानता और सभी मनुष्यों के लिए समान शिक्षा देता है। सब ही दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं, पर बिना ज्ञान के दुःखों से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। निर्वाण सभी मनुष्यों का लक्ष्य है।

बौद्ध दर्शन में एक ओर ध्यान, चिंतन और मनन पर आग्रह है, तो दूसरी ओर आजीविका की शिक्षा पर भी बल दिया गया है। बौद्ध दर्शन के अनुसार मनुष्य कोई भी कार्य करे, वह चाहे

गृहस्थ हो या भिक्षु हो, वह नैतिक जीवन का पालन कर सकता है, और सामाजिक जीवन के लिए अपना जीवन समर्पित करके सुख शांति एवं आनंद प्राप्त कर सकता है। क्योंकि तृष्णा, आकांक्षाएं और स्वार्थी वृत्तियां केवल दुःख का कारण बनती हैं। महात्मा बुद्ध का मध्यम मार्ग संतुलन, संयम और अतिवाद से बचने की शिक्षा देता है।

मध्यम मार्ग में अष्टांगिक मार्ग, सही समझ, विचार, वाणी, कर्म, आजीविका, प्रयास, सजगता और एकाग्रता, दैनिक जीवन के लिए एक व्यवहारिक ढांचा प्रदान करते हैं। मध्यम मार्ग एक लचीली व्यक्तिगत मार्गदर्शिका है, जो मानव जीवन की जटिलताओं जैसे—भौतिक उपभोग, व्यक्तिगत संबंध, करियर का दबाव, मानसिक तनाव, शारीरिक कष्ट इत्यादि कष्टों का निवारण करता है। यह मार्ग इच्छाओं के प्रति संतुलित दृष्टिकोण और स्वयं व दूसरों के प्रति करुणा पर जोर देता है। यह कोई निष्क्रिय या कमजोर दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि आसक्ति से मुक्ति की ओर एक सक्रिय अनुशासित और चुनौती पूर्ण मार्ग है। आज मध्यम मार्ग मन को रूपांतरित करने आंतरिक ज्ञान और संसार की निरंतर पीड़ा-दायक जन्म स्थितियों का सामना करते हुए, स्थिर रहकर शांति प्राप्ति करने के एक प्रासंगिक साधन के रूप में कार्य कर रहा है। स्वयं का दीपक स्वयं बनो, अपनी ही शरण में जाओ, किसी दूसरे की नहीं। चलना हमें स्वयं ही पड़ेगा, अति के दोनों पथों से मुक्ति ही निर्वाण है। मध्यम मार्ग एक खुली उड़ान है। मानव के संपूर्ण जीवन में बौद्ध दर्शन का मध्यम मार्ग परिलक्षित होता है। क्योंकि वर्तमान त्वरित संतुष्टि की दुनिया में बुद्ध की शिक्षाएं वास्तविक लगती हैं, प्रासंगिक लगती हैं, मध्यम मार्ग के आर्य-सत्य और अष्टांगिक मार्ग जीवन में परिलक्षित होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, "आत्मकथन"
2. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, "क्या बुद्ध दुःखवादी थे?"
3. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव
4. डॉ० भदंत आनंद कौशल्यायन, भगवान बुद्ध और उनका धर्म (अनुवाद)
5. नंदकिशोर देवराज, भारतीय दर्शन का इतिहास
6. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा
7. चंद्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन
8. दत्ता और चटर्जी, भारतीय दर्शन
9. M. Hiriyanna, Outlines of Indian Philosophy
10. S. N. Das Gupta, A History of Indian Philosophy Vol. I-IV